शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 8
Issue 2
15 July, 2017

बुजुर्ग पीढ़ियो का आख्यानः 'समय सरगम'

बीज शब्द :

समय सरगम, कृष्णा सोबती, संयुक्त परिवार, हिन्दी साहित्य, उपभोक्तावाद, पीढ़ी अन्तराल, वृद्धावस्था, उपन्यास, वैश्वीकरण।

पुरानी और नयी सदी के दो छोरों को समेटता 'समय सरगम' जिए हुए अनुभव की तटस्थता और सामाजिक परिवर्तन से उपजा एक अनूठा उपन्यास है। लेखिका ने बुजुर्गो की कथा के माध्यम से जीवन के अन्तिम पड़ाव पर जी रहे लोगों की उलझनों, मानसिक द्वन्द्वों, और मृत्युमय जैसे कई विषयों पर चिंतन प्रस्तुत किया है। इस शोध लेख का उद्देश्य वर्तमान में बुजुर्गों की पारिवारिक माहौल में उनकी वास्तविक स्थिति को कई प्रसंगो के माध्यम से उजागर करना और अरण्या के बहाने अपने जीवन के बचे हुए समय के सरगम को चिन्ताओं से परे हटकर उमंग के साथ सुनने और जीवन के प्रति सजग रहने की चेतना के लिए एक विनम्र प्रयास है।

*****

डॉ० सुमन सिंह
एसो0 प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
दयानन्द गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर।
E-mail : sumansingh.dgc@gmail.com

बुजुर्ग पीढ़ियो का आख्यान: 'समय सरगम'

इक्कीसवीं सदी की दुनिया एक द्रुत बदलाव के दौर से गुजर रही है, जिसने सम्पूर्ण मानवता को प्रभावित किया है। मानवीय सम्बन्धों और संवेदनाओं की परिभाषा बदल गयी और संयुक्त परिवार की परिकल्पना छिन्न-भिन्न हो गयी है। ऐसे वातावरण में बुजुर्ग जो कभी हमारी आस्था और आदर के पात्र हुआ करते थे, आज अपने को उपेक्षित, असहाय और एकाकी महसूस कर रहे हैं। वर्तमान समाज में वृद्धावस्था की समस्या जिस विकराल रूप में हमारे सामने है, शायद पहले कभी नहीं थी। आजकल बढ़ती भागदौड़ एवं भौतिक संसाधनों को जुटाने कहोड़ में ज्यादातर सदस्यों के पास अपने बुजर्गों के लिए समय ही नहीं है या समय देना ही नहीं चाहते, क्योंकि समय होता नहीं है निकाला जाता है। धनाढ्य पढ़े-लिखे समाज में बुजुर्गों को उनके कार्य के लिए नौकर रख देना या ओल्ड ऐज होम भेज देने से उनकी देखभाल ठीक ढंग से हो तो जाती है, लेकिन भावात्मक रूप से उन्हें वह खुशी व संतोष नहीं मिल पाता जो उन्हें अपने परिजनों के बीच रहकर मिलता है। इस समस्या से साहित्य भी अछूता नहीं रह पाया है।

कृष्णा सोबती अपनी लम्बी साहित्यिक यात्रा में हर नयी कृति के साथ अपनी क्षमताओं का अतिक्रमण किया है। पुरानी और नयी सदी के दो छोरों को समेटता ''समय-सरगम'' जीये हुए अनुभव की तटस्थता और सामाजिक परिवर्तन से उपजा एक अनूठा उपन्यास है। यह भारत की बुजुर्ग पीढ़ियों का एक ही साथ नया-पुराना आख्यान है। संयुक्त परिवार के भीतर और बाहर वरिष्ठ नागरिकों के प्रति उपेक्षा और उदासीनता 'समय-सरगम' की वंदिश में अन्तर्निहित है। आज के बदलते परिदृश्य में यह रचना व्यक्ति को विश्वव्यापी स्वाधीनता उसके वैचारिक विस्तार और कुछ नये संस्कार संदर्भों को प्रतिध्वनित करता है। मानव मन की भावनाओं का जितना बारीकी अध्ययन लेखिका के रचनाओं में मिलता है, वह अत्यन्त विलक्षण है।

इस उपन्यास में प्रमुख रूप से संयुक्त परिवार, परिवार में बुजुर्गो की भूमिका और वर्तमान पारिवारिक माहौल में उनकी वास्तविक स्थिति को कई प्रसंगों के माध्यम से उजागर किया गया है। दमयंती, प्रभुदयाल और कामिनी इन तीन पात्रों के माध्यम से भारतीय परिवार व्यवस्था के तीन कोणों को उजागर किया गया है और चौथा कोण उपन्यास के प्रमुख पात्र अरण्या और ईशान हैं जो अपने जीवन के बचे हुए समय की सरगम को बाकी चिन्ताओं से परे हटाकर उमंग के साथ सुनने के लिए सजग हैं। यहीं नही बढ़ती उम्र में जीने की सर्तकता और दिनचर्या में सावधानी भी उनके स्वभाव में सम्मिलित है। उनका मानना है कि ''उम्र कभी धोखे में नहीं आती। उनके पास संचित होता है जिए हुए का संत्याश। अनुभव-वहीं श्रेष्ठ है जो अपने जीने और रहने के पास है, निकट है।''[1] अरण्या को सामने रखकर वृद्धजनों की जिजीविषा को समझा जा सकता है। सोबती जी ने अरण्या के बहाने सन्देश देने की कोशिश की है कि उम्र से आदमी बूढ़ा जरूर लग सकता है, पर वह चाहे तो अपनी उम्र को अपने अनुभव और जीवन पर हावी होने से रोक सकता है। मानव जीवन के अन्तिम क्षण तक भी मौत को स्थगित करके जीवन का पूर्ण आनन्द उठा सकता है।

'समय-सरगम' में वृद्धजनों की उस अंतर्मन की स्थिति का विश्लेषण किया गया है जब युवा पीढ़ी अपने बुजर्गों को बोझ समझने लगती है, जिसके कारण वे अपने घरों में ही बेगाने हो जाते हैं। दमयंती और कामिनी की जिन्दगियाँ इस सच्चाई का जीवित दृष्टांत हैं। दमयंती एक कुशल गृहणी, पत्नी, मां थी। पति भी उसकी खूब कद्र करता था, परन्तु पति की मृत्यु के बाद वृद्धावस्था में बेटों की अपनी माँ के दुख-दर्द से कोई सरोकार नही है। दमयंती अपने ही बनाये घर में सीमित कर दी गयी है। सब कुछ होते हुए भी वह अकेली और दुखी है। अरण्या से अपने दर्द को बाँटती हुयी कहती है- ''मैं तुम्हारी तरह अकेली होती तो क्यों परेशान होती। बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरे घर में मेरा किचन चल रहा है, खर्च मैं कर रही हूँ और अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती हूँ। .... मैं ड्राइंग रूम में नही बैठ सकती, मेरे मेहमान नहीं बैठ सकते जबकि वहाँ का सब फर्नीचर साज-सामान मेरा अपना बनाया हुआ है और मैं किसी बेजान काठ की तरह देखी जाती हूँ।''[2] अन्त में दमयन्ती बच्चों द्वारा किये गये अपमान को सहन नहीं कर पाती और कुछ दिनों में उसकी मृत्यु हो जाती है।

ऐसा नहीं कि पति के न रहने पर मात्र विधवा माँ के साथ ही बच्चे दुर्व्यवहार करते हैं, बल्कि आजकल ऐसा ही व्यवहार बुजुर्ग पिता के साथ भी किया जा रहा है। प्रभुदयाल के माध्यम से परिवार के इस विद्रूप रूप का भी परिचय होता है। ''लड़के सूत में पिरोई ताली गले से उतार ली। बाप का इससे

---

1. समय-सरगम-कृष्णा सोबती-पृ0-121, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-संस्करण-2008
2. वही, पृ0 -74

बड़ा अपमान क्या हो सकता है।''[3] सफल उद्यमी प्रभूदयाल बेटों की जिन्दगियों की सफलता का एक रूप देखकर खुद के जीने के लिए थोड़ा स्पेस चाहते हैं। किन्तु एक गुमनाम रहस्यमय मौत मर जाते है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में गला घोटने की बात आयी। किन्तु भारतीय संस्कारों में पला परिवार पुत्र-पुत्रवधू भला ऐसा क्यों करेंगे? पर सोचनीय बिन्दु यह है कि घर में दूसरा कोई आया भी नही। ईशान, अरण्या के निकट सम्बन्ध होते हुए ये अनुभव उन्हें हिला गया कि इस अवस्था में जिनके पास पैसा है वे भी अपने आप को असुरक्षित महसूस करते है।

परिवार द्वारा रूखाई, अवज्ञा एवं उदासीनता को सहते हुए भी माता-पिता बच्चों के साथ रहकर सुख का अनुभव करना चाहते हैं, इस उपन्यास का अन्य पात्र भगत सिंह भी ऐसा ही है। जो अपने बच्चों के साथ के लिए सप्ताह के शुरू में अपने छोटे बेटे के पास रहते हैं और अन्त में अपने बड़े बेटे के पास। परिवार से अलग होकर बुढ़ापा व्यतीत करना सबके बस की बात नहीं है। आर्थिक एवं शारीरिक रूप से कमजोर होने पर उन्हें सहारे की जरूरत होती है। लेखिका स्पष्ट करती है कि ''हम यह न भूले परिवार सुरक्षा की एक नीड़ है और एक-दूसरे को सहारा देने वाली एक घनी छांव भी।''[4] यह कैसी विडम्बना है कि जिन बच्चों को माता-पिता अपना कर्तव्य समझकर उनका पालन-पोषण करते हैं। बड़े होने पर वही बच्चा अपने माता-पिता को बोझ समझने लगता है और उसकी अवहेलना करने लगता है।

उपन्यास में होने वाली वृद्ध व्यक्तियों की यह दारूण अवस्था केवल भारतीय परिवेश तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी यही समस्या है। अपने पात्रों के माध्यम से लेखिका कुछ ऐसी वृद्ध जिन्दगियों में प्रवेश करती हैं जहाँ स्वार्थों तथा सुविधाओं से विघटित पारिवारिक मूल्य हैं, जिन्होंने परिवार की भावनात्मक संरचना को पूरी तरह नष्ट कर दिया है। कामिनी जिसका पति और संतान के नाम पर कोई परिवार नहीं है। वह आर्थिक रूप से समर्थ है और अकेली रहती है। किन्तु सम्पत्ति के लालच में अपने सगे भाई उसे मृत्यु के मुँह में ढकेलने से भी संकोच नहीं करते। खुकु अरण्या और ईशान को बताती है कि कामिनी के भाई कैसे उसके मकान का सौदा कर लिये है और डाक्टर भी स्लोप्वाइजन देने के लिए निर्धारित कर रखे हैं -''साहिब मेम साहिब का कुछ रहने वाला नहीं भाई लोग घर बेच चुके हैं।.................. दो-दो डॉक्टर हैं साहिब, एक नहीं। हर मंगल को भाई लोग का डाक्टर आता है, जैसे कहता है मैं वैसे ही करती हूँ।''[5]

यह कैसी पारिवारिक व्यवस्था है, सभ्यता की चादर में असभ्य हो चुकी कैसी पीढ़ी है जो अपनेपन, ममत्व और भावनाओं का गला घोट रही है? ऐसे घुटनभरे माहौल में व्यक्तित्व का विकास कैसे हो सकता है। अरण्या कहती है- ''व्यक्ति पनपेगा इसके बाहर की प्रयोगशाला में। उसे जुटाना होगा अपने बल-बूते पर। भ्रम है कि भरोसा। लगता है धीरे-धीरे पुराने समय वाले परिवर्तन नए में घुल मिल जायेंगे और नए पुराने पड़ते जायेंगे। सुविधाओं के सच बड़े होते जायेंगे और संबंधों के विश्वास सिकुड़ते जायेगें।''[6] वास्तव में अब रिश्तों और भावनाओं में महत्वपूर्ण स्थान पैसों ने ले लिया है। जिसके पास पैसा है वह परिवार में उतना ही आदरणीय है और जिसके पास पैसा नही है उसका परिवार में कोई कद्र नहीं। इसी तरह बुजुर्ग पीढ़ी शक्ति और अर्थ दानों तरह से क्षीण हो चुकी रहती है। अरण्या कहती है- ''परिवार की सुव्यवस्थित अस्मिता और गरिमा का मूल्य भी उन्हें ही चुकाना होता है जिनका खाता दुबला होता है। परिवार की सांझी श्री पैसे के व्यापारिक प्रबंधन में निहित है उसकी आंतरिक शक्ति कैसी हो चुकी है। घनी छांह की जगह घिसी हुई पुरानी चिंदिया फरफरा रही है।''[7]

माता-पिता अपने परिवार की सहूलियत और खुशी के लिए अपना समय-सामर्थ्य और व्यक्तिगत खुशियों को लुटा देते हैं और अपने बलिदान व त्याग का कोई मूल्य नहीं आँकते। अरण्या बुजुर्गों की इस स्थिति से बखूबी परिचित है, इसीलिए उसे परिवार न होने का कभी पछतावा नहीं हुआ। वह अपने बीते हुए समय को याद करती है, वर्तमान समय का विश्लेषण करती है और आने वाले समय के प्रति जागरूक है। वह वर्तमान समय को पूर्णता से जीना चाहती है। उसके लिए समय संगीत का एक राग है, जिसमें जीवन बंधा हुआ है -''नि:शब्द है समय। पर इसमें भी बहुत कुछ धड़क रहा है और उम्र? वह बकरी बनी चर रही है, धीरे-धीरे। चरने दो उस ओर मत देखों।''[8] अरण्या के माध्यम से सोबती जी समय के महत्व को चित्रित किया है ''समय को जीवन की शक्ति मानते हुए सोबती जी ने इसे ईश्वर की विराट सत्ता के हाथों का नियंत्रण माना है। जीवन का यह सरगम प्रकृति का अटल एवं

3. वही, पृ0 -110
4. वही, पृ0 -65
5. वही, पृ0 -99
6. वही, पृ0 -92
7. वही, पृ0 -68
8. वही, पृ0 -15

अद्‌भुत खेल है, जिसकी डोर परम शक्ति के हाथों में है।''[9]

अरण्या अपने गुजर चुके जीवन से ऊबी नहीं। वह जीवन के बाकी क्षणों में वही आकर्षण महसूस करती है। यह सन्देश बुजुर्ग हो चुकी पीढ़ी के लिए है कि प्रकृति और समय तो नित नवीन है, फिर हम क्यों स्वयं की जरावस्था को अपने परिवेश पर लादें- ''समय तो हमारे बाहर भी है और आगे भी। वही है जो हमें आतंकित करता है .... आगे बढ़कर क्षण को पकड़ लो जो तुम्हारा है। यह शाम यह क्षण यह बारिश लपककर हथेली में समेट लो। एक बार चूकी तो हमेशा के लिए खिसक जाएगी।''[10]

इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका कई स्थलों पर इस सत्य का उद्‌घाटन करती हैं कि बुढ़ापा मानव जीवन की अनिवार्य स्थिति है, जिसे टाला नही जा सकता। इस अवस्था में मनुष्य अपने पुराने एवं नये समय की उधेड़बुन में लगा रहता है और अपने होने का अर्थ अपने में ही खोजता है। सुख-दुख, आशा-निराशा और अच्छा-बुरा समय मानव जीवन के अभिन्न अंग है, इनसे मुख नहीं मोड़ा जा सकता। ईशान और अरण्या के लम्बे संवाद वृद्ध जनों के अकेलेपन की स्थिति को प्रकट करते है कि - ''अकेले रहते-रहते जान लेंगे कि यह स्थिति भी कम अच्छी नहीं। अकेले होने पर आप अपनों से दूर नहीं होते अपने में खोजते हैं उन सम्भावनाओं को जो मूल्यवान हैं, आप अपने नजदीक होते जाते हैं।''[11] ईशान और अरण्या की सादगी भरी सक्रिय जीवन शैली में अकेलेपन के विरूद्ध डटे रहने के अपने सकते हैं। अपनी आत्मनिर्भरता को बनाये रखने की सबसे बड़ी जुगत है।

वृद्धों की जिन्दगी की सच्चाई के अधिक मूर्त हिस्सों को लेकर चली यह कृति अपने रास्ते में एक संदेश भी खोजती है, जो किसी हद तक संवेदनहीन होते चले जाते परिवारों के बरअक्स वंश, जाति, वर्ण बगैरह को तोड़कर जीने के लिए ज्यादा खुली मानवीय जमीनों की ओर संकेत करती है। वृद्धों की इस दुनिया में ईशान और अरण्या अपनी भावनात्मक आत्मनिर्भरता को पक्का करते हुए अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट भिन्नताओं के बावजूद अन्ततः एक दूसरे के साथ रहना चुनते हैं। सोबती जी ने बड़ी चतुराई और कौशल से उपन्यास के ताने-बाने को बुना है। अरण्या जीवन के कठिन दौर में अकेले चलती है उसकी जिन्दगी का आख्यान अस्तित्ववादी है, जिसमें स्त्रीवाद का समूचा नारी विमर्श मौजूद है, पर उसे भी अन्त में ईशान जैसे विधुर का सहारा लेना पड़ता है। ईशान अरण्या से कहते हैं ''अरण्या हम दोनों जानते हैं कि हम दोनों में से न कोई सुखी है और न कोई दुखी। हम दोनों ही अपने सुखों और दुखों से बाहर हैं। इसलिए कि हम अब किन्हीं सुखों की प्रतीक्षा नहीं कर रहे।''[12] अन्त में लेखिका दो विपरीत स्वभाव वाले ईशान और अरण्या को एक साथ कर स्पष्ट करना चाहती है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी मोड़ पर एक-दूसरे का सहारा चाहिए, खासकर वृद्धावस्था में, क्योंकि वह मनुष्य की नैसर्गिक आवश्यकता है। दोनों एक दूसरे के पड़ोसी थे किन्तु हाथ बढ़ाते-बढ़ाते जीवन साथी बन जाते हैं। वे सोचते हैं कि दोनों शेष जीवन के सुख-दुख को साथ-साथ बाँटे।

'समय-सरगम' कृष्णा सोबती की परिपक्व अवस्था की अनुभूतियों का महाकाव्य है। इस उपन्यास के बहाने लेखिका ने बुजुर्गों की दुनिया के अनेक ऐसे मनोभावों को सूक्ष्म स्तर पर अभिव्यक्त करने की कोशिश की जिनसे हमारी युवा पीढ़ी बेखबर है। आधुनिकता बोध और सूचना प्रोद्यौगिकी की आँधी ने भारती जीवन मूल्यों को तिनके की तरह उड़ा दिया है। उपभोक्तावादी दृष्टिकोण ने वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को खोखला सिद्ध कर दिया और एकल परिवार की अवधारणा में भारतीय युवक वृद्ध माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्य को भूलते जा रहे हैं। दमयंती, प्रभुदयाल और कामिनी जैसे वृद्ध पात्रों की संख्या हमारे समाज में बहुत है। जो किसी न किसी रूप से अकेलापन जीने के लिए मजबूर है, या उनके बच्चे अकेले जीने के लिए छोड़ गये हैं। इसके बावजूद सकारात्मक बात यह है कि अरण्या और ईशान जैसे पात्र भी हैं भले ही उनकी संख्या कम है। फिर भी वृद्धजनों के लिए प्रेरणाप्रद हैं। ''यह एक ऐसा बहुमूल्य उपन्यास है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रौढ़ावस्था की उन स्थितियों का निरूपण करता है, जो कि प्रत्येक मानव के जीवन में घटित हो रही है या होने वाली है।''[13] यह उपन्यास समाज की उस दुखती रग पर पाँव रखता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को गुजरना है। इसके माध्यम से लेखिका ने जो बौद्धिक उत्तेजना, आलोचनात्मक विमर्श, सामाजिक और नैतिक बहसें साहित्यिक संसार में पैदा की है, उनकी अनुगूँज पाठकों मे बराबर बनी रहेगी।

9. हंस- सं0 राजेन्द्र यादव - जुलाई-2000 पृ0 - 85
10. समय-सरगम-कृष्णा सोबती - पृ0 - 17
11. वही, पृ0 -82
12. वही, पृ0 -132
13. सम्मेलन पत्रिका-सं0 विभूति मिश्र- भाग 95 सं0-3 पृ0-100

◆◆◆